

## महावीर-सन्देश

- जो आत्म-स्वरूप को जानता है, वह सब कुछ जानता है।
- पुरुष! तू ही स्वयं अपना मित्र है। तू बाह्य जगत् में मित्र क्यों ढूँढ़ता है?
- अपनी आत्मा ही नरक की वैतरणी नदी तथा कूटशात्मली वृक्ष है। और अपनी आत्मा ही स्वर्ग की काम धेनु तथा नन्दन वन है।
- अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध करना चाहिए। बाहरी शत्रुओं के साथ युद्ध करने से क्या लाभ? आत्मा के द्वारा आत्म जयी ही वास्तव में पूर्ण सुखी होता है।
- जो प्राणिमात्र को आत्मवत् समझता है, अपने-पराये सबको समान दृष्टि से देखता है; निराश्रय होकर आत्मा का दमन करता है, वह पाप-कर्म से लिप्त नहीं होता।
- प्रत्येक साधक प्रतिदिन चिन्तन करे कि—मैंने क्या कर लिया और क्या करना शेष है? कौन-सा ऐसा शक्य कार्य है, जिसको मैं नहीं कर पा रहा हूँ?
- आत्मा ही अपना सुख-दुःख का कर्ता तथा भोक्ता है। अच्छे मार्ग पर चलने वाला आत्मा अपना मित्र है, और बुरे मार्ग पर चलने वाला आत्मा अपना शत्रु है।
- अपने-आपको ही दमन करना चाहिए। वस्तुतः अपने-आपको दमन ही कठिन है। अपने-आपको दमन करने वाला उभयलोक में सुखी होता है।
- मानव! तू अपने-आपको वश में कर। इस प्रकार तू दुःखों से छुटकारा पा जाएगा।
- शरीर को नाव कहा है, आत्मा नाविक कहलाता है, संसार को समुद्र बतलाया है। इस संसार-समुद्र को महर्षि जन पार करते हैं।
- मनुष्य-जीवन पाकर कर्मों से युद्ध करो। बाह्य युद्धों से तुझे क्या? यदि इस बार चूक गए, तो फिर युद्ध के योग्य नर-जन्म मिलना कठिन है।

- जो वीर दुर्जय संग्राम में लाखों योद्धाओं को जीतता है; यदि वह एक अपनी आत्मा को जीत ले, तो यह उसकी सर्वोपरि विजय है।
- दूसरे लोग मेरा वध-बन्धनादि से दमन करें, इसकी अपेक्षा मैं संयम और तप के द्वारा अपना दमन करूँ, यह अच्छा है।
- अज्ञानी मनुष्य भूत और भविष्य को भूल जाता है। वह इस बात पर भी विचार नहीं करता कि इस आत्मा को संसार में क्यों भटकना पड़ता है, और भविष्य में क्या दशा होगी?
- विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह संसार-भ्रमण के कारण दुष्कर्म-पाशों को भलीभाँति समझकर अपने-आप स्वतन्त्र रूप से सत्य की खोज करे, और सब जीवों पर मैत्रीभाव रखे।
- सिर काटने वाला शत्रु भी उतना अपकार नहीं करता, जितना कि दुराचरण में आसक्त आत्मा करती है।
- ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य से परिपूर्ण मेरी आत्मा ही शाश्वत है; सत्य सनातन है। आत्मा के सिवा अन्य सब पदार्थ संयोग-मात्र से मिले हैं।
- जो तू अपने लिए चाहता है, वह दूसरों के लिए चाह, जो तू अपने लिए नहीं चाहता, उसे दूसरों के लिए भी मत चाह—बस, जिन-शासन इतना ही है।
- ज्ञान, मानवता का सार है, लेकिन ज्ञान का भी सार है सम्यक्त्व—सच्ची आत्म-श्रद्धा।
- धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। धर्म का अर्थ है—अहिंसा, संयम और तप। जिसका मन सदा धर्म में रमा रहता है, देवता भी उसे नमस्कार करते हैं।
- सदा विषय-भोगों में रचा-पचा रहने वाला मनुष्य धर्म के तत्त्व को नहीं पहचान सकता।
- यह आत्मा सुनकर ही धर्म का मार्ग जानता है, और सुनकर ही पाप का। दोनों मार्ग सुनकर ही जाने जाते हैं। जो श्रेयस्कर प्रतीत हो, उसका आचरण करें।
- मनुष्य-शरीर पाकर भी सद्धर्म का श्रवण दुर्लभ है, जिसे सुनकर मनुष्य तप, क्षमा और अहिंसा को स्वीकार करते हैं।
- जब तक बुढ़ापा नहीं सताता, जब तक व्याधियाँ नहीं बढ़तीं, जब तक इन्द्रियाँ हीन, अशक्त नहीं होतीं, तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए।

- जो पथिक बिना पाथेय लिए ही लम्बी यात्रा पर चल पड़ता है, वह आगे जाता हुआ भूख तथा प्यास से पीड़ित होकर अत्यंत दुःखी होता है।
- इसी प्रकार जो मनुष्य बिना धर्माचरण किए परलोक जाता है, वह भी वहां नाना आधि-व्याधियों से पीड़ित होकर अत्यंत दुःखी होता है।
- जो पथिक लम्बी यात्रा में अपने साथ पाथेय लेकर चलता है, वह आगे चलकर भूख और प्यास से तनिक भी पीड़ित न होकर अत्यन्त सुखी होता है।
- जो मनुष्य भली भांति धर्माचरण करके परलोक जाता है, वह वहां लघुकर्मी तथा पीड़ारहित होकर अत्यन्त सुखी होता है।
- जिस प्रकार मूर्ख गाड़ीवान जानता हुआ भी साफ मार्ग को छोड़कर विषम मार्ग पर जाता है, और गाड़ी को धुरी टूट जाने पर शोक करता है--उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य भी धर्म को छोड़कर और अधर्म को ग्रहण कर, अन्त में मृत्यु के मुंह में पड़कर जीवन की धुरी टूटने पर शोक करता है।
- जो रात और दिन एक बार अतीत की ओर चले आते हैं, वे कभी वापस नहीं लौटते; जो मनुष्य अधर्म, पाप करता है, उसके वे रात-दिन बिल्कुल निष्फल जाते हैं।
- जो रात और दिन एक बार अतीत की ओर चले जाते हैं, वे फिर कभी वापस नहीं लौटते; जो मनुष्य धर्म करता है, उसके वे रात और दिन सफल हो जाते हैं।
- भन्ते! कैसे चलें? कैसे खड़े हों? कैसे बैठें? कैसे सोएं? कैसे खाएं? कैसे बोलें? जिससे कि पाप-कर्म का बंधन हो।
- आयुष्मन्! विवेक से चलें, विवेक से खड़े हों, विवेक से बैठें, विवेक से सोएं, विवेक से खाएं, और विवेक से ही बोलें, तो पाप-कर्म का बंध नहीं होता।
- सिर मुंडा लेने से कोई श्रमण नहीं होता। 'ॐ' का जाप करने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। निर्जन वन में निवास करने से कोई मुनि नहीं बनता और न कुशा-वस्त्र धारण करने से कोई तपस्वी ही होता है।
- समता से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है, ज्ञान से मुनि होता है, और तप करने से तपस्वी बना जाता है।
- संसार में चार साधनों का मिलना बहुत दुर्लभ है--मनुष्यत्व, धर्म-श्रवण, श्रद्धा और संयम में पुरुषार्थ।

- जो मनुष्य प्रतिमास लाखों गायों दान देता है, उसकी अपेक्षा कुछ भी न देने वाले किन्तु संयम धारण करने वाले का आचरण श्रेष्ठ है।
- कितने ही अविवेकी साधुओं से विवेकशील गृहस्थ श्रेष्ठ हैं। विवेकशील साधु तो सब गृहस्थों से उत्तम हैं, श्रेष्ठ हैं।
- मनुष्य कर्म (आचरण) से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है, और शूद्र भी कर्म से ही होता है।
- मनोरम काम-भोगों का मिलना सुलभ है, स्वर्ग का वैभव पाना भी सहज है, पुत्र, मित्र आदि का संयोग भी सुलभ है; परन्तु एक धर्म की प्राप्ति होना दुर्लभ है।
- धार्मिक पुरुषों का जागरण—जागते रहना अच्छा है, और पापी लोगों का सोते रहना ही अच्छा है।
- जिन-शासन का मूल विनय है। विनीत साधक ही सच्चा संयमी हो सकता है। जो विनय से हीन है, उसको कैसा धर्म और कैसा तप?
- जो आने वाले स्नेही जनों में आसक्ति नहीं रखता तथा जाते हुएों का शोक नहीं करता और जो आर्य-वचन में सदा रमण करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।
- सच्चे धर्म के अनुगामी वीर पुरुष की धीरता देखो, जो अधर्म का परित्याग कर धर्मिष्ठ हो जाता है, और अन्त में देवत्व प्राप्त करता है।
- धर्म-उपदेश जिस प्रकार धनवान् के लिए है, उसी प्रकार गरीब के लिए भी है। जिस प्रकार गरीब के लिए है, उसी प्रकार धनवान् के लिए भी है।
- सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई भी नहीं चाहता। इसलिए निर्ग्रन्थ—जैन मुनि प्राणि-वध का सर्वथा परित्याग करते हैं।
- जैसे मुझे दुःख प्रिय नहीं है, वैसे ही सब चीजों को दुःख प्रिय नहीं है, यह समझकर जो न स्वयं हिंसा करता है और न दूसरों से हिंसा करवाता है वही श्रमण—भिक्षु है।
- किसी भी प्राणी की हिंसा न करना ही ज्ञानी होने का सार है। अहिंसा-सिद्धान्त ही सर्वश्रेष्ठ है, विज्ञान केवल इतना ही है।
- साधक! जन्म-मरण को जानकर ज्ञान, दर्शन आदि मोक्ष-मार्ग पर विचार करो। न किसी जीव को स्वयं मारो, न मारने के लिए कहो और न मारने वाले का अनुमोदन ही करो।

- सब प्राणियों को दुःख अप्रिय लगता है, अतः किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए।
- सभी प्राणी दीघार्यु चाहते हैं। सुख पसन्द करते हैं, दुःख से घबराते हैं। सबको मरण अप्रिय है, जीवन प्रिय है। सब जीने की कामना करते हैं। संसार में जीवन सबको प्यारा है।
- जिसने हिंसा करना छोड़ दिया है, वही समझदार है; और वही ज्ञानी है। इस बात को बिल्कुल ठीक समझो।
- जो मनुष्य प्राणियों की स्वयं हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है, और हिंसा करने वालों का अनुमोदन करता है, वह संसार में अपने लिए वैर को ही बढ़ाता है।
- हिंसा आदि कार्य करने के बाद भी कई भव्य प्राणी संयम-मार्ग पर चले आते हैं। भोगों को निःसार समझकर वे फिर उनका सेवन नहीं करते।
- वैर रखने वाला मनुष्य सदा वैर ही किया करता है। वह वैर में ही आनन्द मानता है। हिंसा-कर्म पाप को उत्पन्न करने वाले हैं, अन्त में दुःख पहुंचाने वाले हैं।
- सम्यक् बोध को प्राप्त बुद्धिमान् मनुष्य हिंसा से उत्पन्न होने वाले वैर-वर्धक तथा महा भयंकर दुःखों को जानकर अपने को पाप-कर्म से बचाए।
- संसार में प्रत्येक प्राणी के प्रति—फिर भले ही वह शत्रु हो या मित्र—समभाव रखना, तथा जीवन-पर्यन्त सभी प्रकार की हिंसा का त्याग करना—वस्तुतः बड़ा ही दुष्कर है।
- साधक को चाहिए कि वह संसार में रहने वाले त्रस और स्थार जीवों पर मन, वचन, तन से किसी भी तरह दण्ड का प्रयोग न करे।
- जीवन-हिंसा अपनी हिंसा है, जीव-दया अपनी दया है। इसी दृष्टि को लेकर आत्मार्थी साधकों ने हिंसा का सर्वथा परित्याग किया है।
- संसार में जो कुछ भी उदार सुख, प्रभुता, सहज सुन्दरता, आरोग्य एवं सौभाग्य दृष्टिगत होते हैं; वे सब अहिंसा के ही फल हैं।
- संसार में जैसे सुमेरु से ऊंची और आकाश से विशाल कोई दूसरी चीज़ नहीं है, इसी प्रकार वह निश्चय समझो कि अखिल विश्व में अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।

- यह बात निश्चित जानो कि चारों गति के जीव जितने भी दुःख भोगते हैं; वे सब हिंसा के ही फल हैं।
- जैसे तुझे दुःख अप्रिय है, इसी प्रकार संसार के सब जीवों को दुःख अप्रिय है—ऐसा समझकर सब प्राणियों पर आत्मवत् आदर एवं उपयोगपूर्वक दया करो।
- यह जीव-हिंसा ही ग्रन्थ—आठों कर्मों का बन्ध है, यही मोह है, यही मृत्यु है, और यही नरक है।
- संसार में जितने भी त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उन सबको क्या जान में और क्या अजान में—न स्वयं मारे और न दूसरों से मरवाएं।
- भय और वैर से निवृत्त साधक, जीवन के प्रति मोह-ममता रखने वाले सब प्राणियों को सर्वत्र अपनी ही आत्मा के समान जानकर उनकी कभी भी हिंसा न करे।
- मानव! सत्य को पहचान। जो विद्वान् सत्य-मार्ग पर चलता है, वह संसार-सागर को पार कर जाता है।
- सत्य ही भगवान् है।
- असत्य संसार से सभी सत्पुरुषों द्वारा निन्दित ठहराया गया है, और सभी प्राणियों को अविश्वसनीय है, इसलिए असत्य छोड़ देना चाहिए।
- सदा अप्रमत्त और सावधान रहकर, असत्य को त्यागकर, हितकारी सत्य-वचन ही बोलना चाहिए। इस तरह सत्य बोलना बड़ा कठिन होता है।
- अपने स्वार्थ के लिए अथवा दूसरों के लिए, क्रोध अथवा भय से—किसी प्रसंग पर दूसरों को पीड़ा पहुंचाने वाला असत्य वचन न तो स्वयं बोले, न दूसरों से बुलवाए।
- सत्य में दृढ़ रहो। सत्य-रत मेधावी व्यक्ति सब पापों को नष्ट कर डालता है।
- लोहे के कांटे—तीर तो थोड़ी देर तक ही दुःख देते हैं, और वह भी शरीर से बड़ी सरलता से निकाले जा सकते हैं; किन्तु वाणी से कहे हुए तीक्ष्ण वचन के तीर वैर-विरोध की परम्परा को बढ़ाकर भय को उत्पन्न करते हैं, और जीवनपर्यन्त कटु वचन का हृदय से निकलना बड़ा ही कठिन है।

- जो भाषा कठोर हो, दूसरों को दुःख पहुंचाने वाली हो, चाहे वह सत्य ही क्यों न हो, नहीं बोलनी चाहिए; क्योंकि उससे पाप का आगमन होता है।
- सत्य ही लोक में सार-तत्त्व है। वह महासमुद्र से भी अधिक गम्भीर है।
- सदा सत्य से सम्पन्न होकर विश्व के प्राणिमात्र के साथ मैत्री-भाव रखे।
- सत्य यश का मूल है, सत्य विश्वास का प्रधान कारण है, सत्य स्वर्ग का द्वार है, और सत्य ही सिद्धि का सोपान है।
- सचेतन पदार्थ हो या अचेतन, अल्प-मूल्य पदार्थ हो या बहुमूल्य, और तो क्या, दन्त-शोधन की सींक भी जिस गृहस्थ के अधिकार में हो, उसकी आज्ञा लिए बिना--पूर्ण संयमी साधक न स्वयं ग्रहण करते हैं, न दूसरों को ग्रहण करने के लिए प्रेरित करते हैं, और न ग्रहण करने वालों का अनुमोदन ही करते हैं।
- दांत कुरेदने की सींक आदि तुच्छ पदार्थ भी बिना दिए चोरी से न लेना, निर्दोष एवं एषणीय भोजन-पान भी दाता के यहां से दिया हुआ ही लेना—यह बड़ी दुष्कर बात है।
- अ-ब्रह्मचर्य अधर्म का मूल है, महादोषों का स्थान है; इसलिए निर्ग्रन्थ—मोक्ष-साधक मैथुन-संसर्ग का सर्वथा परित्याग करते हैं।
- काम-भोगों का रस न जान लेने वाले के लिए अ-ब्रह्मचर्य से विरत होना और ब्रह्मचर्य का महाव्रत धारण करना, बड़ा कठिन कार्य है।
- धीर पुरुष! भोगों की आशा तथा लालसा छोड़ दे! तू स्वयं इस कांटे को लेकर क्यों दुःखी हो रहा है?